भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-4, अंक-8-11 | सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी | वार्षिक चन्दा-25.00
मंगलवार, 25 नवं. ' 80 | मानद सहसम्पादकः डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे | प्रति अंक : 2.25

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

अहमदाबाद और गढडा में मंदिर-निर्माण की कहानी हमने पढ़ ली। मंदिरों के साथ मानस मन-मंदिर निर्माण की अनेक कहानियाँ जुड़ी हुई हैं ये भी हमने समझ ली। ऐसी ही कहानी है जूनागढ़ मंदिर की।

ब्रह्मानंदस्वामी द्वारा जूनागढ़ मंदिर का निर्माण

जूनागढ़ के हरिभक्तों की प्रार्थना हुई और महाराज ने यहाँ एक भव्य मंदिर का निर्माण प्रारंभ करवाया। यह कार्य महाराज ने ब्रह्मानंदस्वामी को संभलवाया था। मंदिर का प्रारंभ तो हो गया। विरोधियों द्वारा हर क्षण कुछ न कुछ विघ्न होता रहा, फिर भी मंदिर-निर्माण होता ही रहा। विवश होकर कुछ विरोधियों ने जूनागढ़ के नवाब साहब को उकसाया- ''मंदिर तुड़वा दो।'' किन्तु नवाब ने एक भी नहीं मानी क्योंकि नवाब को महाराज और उनके सन्तों के प्रति अत्यंत सद्भाव था। मंदिर का कार्य चलता रहा और दो साल में एक भव्य मन्दिर खड़ा हो गया। महाराज ने स्व हस्त से वहाँ मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। इस प्रसंग पर जूनागढ़ में एक भव्य समारोह हुआ।

आप सरीखे बड़े फकीर

नवाब बहुत खुश थे। उन्होंने महाराज को कहा ''इतना बड़ा मंदिर आपने यहाँ बनवाया यह बहुत अच्छा हुआ। अब यहां आप रहिए या आप सरीखे बड़े फकीर को यहां रखना।'' महाराज ने शीघ्र कहाः ''हां, नवाब साहब! हम अपने सरीखा फकीर ही यहीं रखेंगे। यह जो हमारे सामने बैठे हैं वह ही रहेंगे।'' यूं कह कर महाराज ने गुणातीतानंदस्वामी की ओर इशारा किया।

गुणातीतानंदस्वामी की सादगी

वास्तव में महाराज ने जूनागढ़ मंदिर के महन्त गुणातीतानंदस्वामी को ही बनाया। इन्होंने जो मंदिर की सेवा की है। वह इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। मंदिर का हर कार्य स्वामी जी अपने आप करते थे। झाड़ू भी खुद लगाते थे। केवल बाजरे की रोटी और छाछ इनका आहार था। दूध, घी या मिष्ठान वे कभी नहीं ग्रहण करते थे। पाँव में जूतियाँ भी नहीं पहनते थे। जाड़ों की भयंकर ठंड में भी ठंडे पानी से स्नान करते थे। स्वामी की महिमा का गान महाराज स्वयं करते थे।

महाराज के दिव्य मशाल के प्रथम मशालची

बार-बार महाराज ने कहा थाः गुणातातीनंदस्वामी मेरा अक्षरधाम है। गुणातीतानंदस्वामी सामान्य कोटि

के सन्त नहीं थे। महाराज की दिव्य मशाल के वे प्रथम मशालची थे। महाराज के बाद वे ही महाराज रूप थे। अनेक धर्म सम्प्रदाय ऐसे हैं कि जब तक इनके प्रणेता इस लोक में होते हैं, तब तक धर्म ख्याति अप्रतिम तेज से प्रकाशित रहती है,किन्तु जब वह इस भूतल से विदाई लेते है तब धर्मज्योति मंद और क्षीण होकर नष्ट प्राय हो जाती है। स्वामिनारायण भगवान को स्वधाम गये 150 से अधिक साल हो गए हैं किन्तु इनका कार्य केवल इतिहास की घटना न रहकर निरन्तर वर्धमान है और विश्वास से कहा जा सकता है कि यह नित्य निरंतर वर्धमान होगा। गुणातीतानंदस्वामी के संकल्प के अनुसार संसार का हर पत्ता–तिनका भी स्वामिनारायण-स्वामिनारायण रट कर धन्य हो जायेगा। इसका श्रेय महाराज के संकल्प से प्रचलित गुणातीत परंपरा के आद्यर्षि स्वामी गुणातीतानंद को है इसमें किसीको तनिक भी शंका आज जब महाराज के बाद की छठी पीढ़ी चल रही है तब, नहीं होनी चाहिए।

अक्षर तत्त्व की जानकारी

पूर्ण पुरुषोत्तम तो महाराज ही है यह स्वामिनारायण सम्प्रदाय में सबको दृढ़ निश्चय है। किन्तु 'अक्षर' थे गुणातीतानंदस्वामी। यहां इस 'अक्षर' को समझाने की कुछ कोशिश करेंगे। गीता के 15वें अध्याय के 16-17-18-19वें श्लोक यहां कुछ सहायभूत होंगे।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरः च अक्षरः एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थः अक्षरः उच्यते।।

इस लोक में दो प्रकार के पुरुष हैः **'क्षर'** (नाशवान) और **'अक्षर'** (अविनाशी)। सब प्राणीमात्र **'क्षर'** और कुटस्थ **'अक्षर'** कहा जाता है।

उत्तम पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।

उत्तम पुरुष तो इन दोनो (क्षर और अक्षर) से अलग है। यह तीनों लोकों में प्रवेश कर के सबका धारण करते हैं। वह है अविनाशी परमात्मा।

यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

मैं क्षर से तो पर हूँ ही, साथ-साथ अक्षर से भी पर–उत्तम हूँ, इसलिये लोक और वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं।

गीता के अध्याय 7 श्लोक 4-5 भी यहां मननीय है।

परा प्रकृति

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्नाः प्रकृतिरष्टधा।।

पृथ्वी, पानी, अग्नि, पावन और आकाश; इसके अतिरिक्त मन, बुद्धि और अहंकार इस प्रकार कुल आठ प्रकार की मेरी प्रकृति है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति विद्धि मे पराम।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।

उपर्युक्त आठ प्रकार की प्रकृति जो कही वह है अपरा प्रकृति-जो जड़ प्रकृति है। इससे अतिरिक्त मेरी जीव रूप चेतन प्रकृति है-जो परा प्रकृति है, जिससे यह संपूर्ण जगत् धारण किया जाता है।

इन श्लोकों के साथ एक और श्लोक (गी.अ. 13 श्लोक, भी देख लें।)

इदं शरीरं कौन्तेयं क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।

यह शरीर खेत है। खेत में हम बीज बोते हैं। और तदनुसार वहां फल प्रकट होता है इसमें बोये हुए कर्मों का संस्कार रूप बीजों का फल यहां समय पर प्रकट होता है। अतः तत्त्वदर्शिओं द्वारा इसे 'क्षेत्र' ऐसा कहा गया है और इसको जो जानता है वह क्षेत्रज्ञ–तत्त्व को जाननेवाला कहा जाता है।

यहां उद्धृत श्लोकों में मननीय हैं तीन शब्द युगलः

1. क्षर–अक्षर;
2. अपरा प्रकृति–परा प्रकृति;
3. क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ

जो क्षर है वह ही अपरा प्रकृति है और वह ही क्षेत्र है और जो अक्षर है वह ही परा प्रकृति है और क्षेत्रज्ञ है।

पूर्ण पुरुषोत्तम 'क्षर' भी नहीं है, 'अक्षर' भी

नहीं है। वह तो दोनों से ऊपर उठे हुए उत्तम पुरुष ही है। वह है भगवान श्री स्वामिनारायण जो क्षर है वह है प्राणी मात्र–हम सब। इस संसार में जो कुछ दृश्यमान है–दिखाई पड़ता है वह पृथ्वी अप्, तेज, वायु और आकाश है या उनमें से दो के, तीन के, चार के या पाँचों के समन्वय से बना हुआ है। यह है जड़ प्रकृति। हमारा शरीर भी यह जड़ प्रकृति ही है। दृश्यमान हर चीज उत्पन्न हुई है इसका नाश निश्चित है। जिन्होंने जन्म लिया उनका मरण है ही। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति मात्र मरणशील या क्षर है। इससे भिन्न जो है, वह मरणशील या क्षर नहीं है, अक्षर है। आत्मा तो सब सजीवन पदार्थो में है किन्तु यह आत्मा वंशानुगत जन्म जन्मांतरों के अभ्यास-वश काल, कर्म, माया, स्वभाव आदि के कारण ब्रह्म भाव को प्राप्त नहीं हुआ है। मैं शरीर हूँ इस अभ्यास को देहाध्यास करते है। आध्यात्मिक साधना के प्रारंभ में–'मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर तो पृथ्वी-अप्-तेज-वायु-आकाश का समन्वय है और ये सब तो प्रकृति है–जड़ प्रकृति है। मेरे में तो चैतन्य रममाण है मैं तो इसका साक्षी हूँ। मैं केसे प्रकृति हो सकता हूँ? ऐसा प्रश्न करके, इस पर नित्य मनन करके काया के ऊपर उठ जाना है। वास्तव में यह प्रथम डग है; किन्तु नाम रूपात्मक प्रकृति मैं नहीं हूँ इतना ही चित्त में जब सिद्ध होता है तब भी व्यक्ति अनेक सिद्धियां प्राप्त करता है। किन्तु जैसा कि महाराज ने शिक्षापत्री में लिखा हैः

''निजात्मनं ब्रह्मरूपं देहत्रयविलक्षणम्।''

तक हमें पहुँचना है। बहार दृश्यमान देह मैं नहीं हूँ यह सिद्ध होने के बाद भीतर का सूक्ष्म और कारण शरीर भी मैं नहीं हूँ यह सिद्ध करना पड़ता है क्योंकि जैसा कि आगे देखेंगे–

भूमि, आपः, अनलः वायुः, खं ही नहीं किन्तु मनः, बुद्धिः और अहम् (मैं हूं यह भाव) भी प्रकृति है। मैं यह भी नहीं हूँ।

ब्रह्मभाव में जीव की जागृति।

यह सिद्ध हो जाने के बाद न **स्वभाव** रहता है, न प्रारब्धादि **कर्म** रहता है, न **माया** का आवरण रहता है, न **काल** रहता है, न **स्थल** रहता है। तब मैं कौन हूँ का उत्तर–

आपका **नाम** नहीं, आपकी आकृति–**रूप** नहीं, आपकी व्यक्तिगत विशेषता–**गुण** नहीं है किन्तु मैं ब्रह्म हूँ ऐसा ही उत्तर मिलेगा।

अनादि मूल अक्षर

''मैं स्वयं ब्रह्म हूँ।'' ''मैं ही वह अक्षर हूं।'' ऐसी हठ प्रतीति जिनको जन्म से थी वह थे गुणातीतानंदस्वामी। अतः हम इनको मूल अक्षर कहते है। महाराज ने बार-बार गुणातीतानंदस्वामी का परिचय इसी रूप में–मूल अक्षर के रूप में दिया हैः

''आज भादरा में जिनका प्रागट्य हुआ था उन मूलजी शर्मा–जो कि हमारा मूर्तिमान अक्षर ब्रह्मधाम है उनको दीक्षा देते हुए मुझे अत्यंत आनंद होता है।''

जब महाराज ने उनको (गुणातीतानंद स्वामी को) दीक्षा दी तब उन्होंने उपर्युक्त शब्दों द्वारा स्वामी जी का परिचय दिया था। हरिलीला कल्पतरु में ये ही शब्द इस प्रकार हैः

मूलजी शर्मणे दीक्षां ददानस्य प्रजायते।
भूयान्मेऽत्र समानन्दो यतो धामाऽक्षरं स मे।।

मूलजी शर्मा को 'गुणातीतानंद' नाम भी इसलिये दिया कि वे तीन गुण से पर थे और प्रकृति पुरुष आदि किसी भी प्रकार की उपाधि उनके स्वरूप में नहीं थी। अतः वे संप्रदाय के इतिहास में 'अनादि मूल अक्षर मूर्ति' के रूप में सुप्रसिद्ध है। जैसे कि आगे लिखा गया इस 'मूल अक्षर' को तीन देह से पर अपना निजी 'ब्रह्माक्षर' रूप में प्रतिष्ठित होने के लिये किसी भी प्रकार का पुरुषार्थ नहीं करना पड़ा था। जन्म से ही वे अधोउर्ध्व और प्रमाण से रहित थे। अतः स्वयं पुरुषोत्तम और अनंत मुक्तों का निवास स्थान उनका अस्तित्व था। महाराज ने इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में घोषित किया हैः

मुक्तैः अनन्तैः साकं मे यत्राऽखण्डत योष्यते।
ऊर्ध्वाधोभाग रहितं तन्मुलं धाम चाक्षरम्।।

यह अक्षर ब्रह्मधाम अधोऊर्ध्व और प्रमाण से रहित है, और उसमें मैं मेरे अनंत मुक्तों के साथ रहता हूँ।

अक्षर के अवतार का प्रयोजन

भारत में भगवान के अनेक अवतारों को हम मानते हैं। इन्होंने और अन्य ऋषि, मुनि, दार्शनिक आदि ने अपना युग कार्य भी किया इसमें तनिक भी शङ्का नहीं है। किन्तु एकांतिक धर्मस्थापना करके मनुष्यों का ही नहीं, पशु, पक्षी, प्राणी आदि का ही नहीं, किन्तु वनस्पति आदि का भी परम कल्याण करने की भावना से स्वामिनारायण के रूप में स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम का आविर्भाव हुआ। उनका दर्शन भी नहीं किया था। तब से मूलजी शर्मा उनको पहचानते थे।

इतना ही नहीं उनके बारे में कुछ न कुछ ना कहा भी करते थे कि ''महाराज का आज उपनयन- सस्ंकार है'', ''आज महाराज का वनविचरण है'' इत्यादि। महाराज ने जन्म लिया तब ही अपने अक्षरधाम रुप मुलजी शर्मा का जन्म दिलवाया, क्योंकि अक्षर द्वारा ही जीव को पुरुषोत्तम के परम स्वरुप का सत्य ज्ञान प्राप्त होता है।

जैसा कि हमने आगे देखा कि जीव को देहत्रय विलक्षण-तीन देह से परे मैं हूँ यह भान आवश्यक है; किन्तु जब की बाह्य देहाध्यास भी नहीं छूटता है वहाँ अन्य अध्यासों से मुक्त बनना अतीव दुष्कर है। व्रत, जप, तप नियम, स्वाध्याय, यज्ञ, दया दमन आदि शक्तिशाली साधन होते हुए भी वे ब्रह्मभाव जागृत करने में एकदम असमर्थ हैं। ऐसी जागृति ब्रह्मस्वरूपों के माध्यम से होती है। इसके लिये मूल अक्षर मूर्ति गुणातीतानंदस्वामी का प्रादुर्भाव हुआ था।

अक्षरपुरुषोत्तम की उपासना का उद्देश्य

अतः हम जीवों के लिये पुरुषोत्तम की उपासना जितनी आवश्यक है इतनी ही अक्षर की उपासना भी आवश्यक है। स्वामिनारायण का पुरुषोत्तम परम ब्रह्म के रूप में स्वीकार करना अक्षर के बिना असंभव है और अपना आवरण छेदना भी असंभावित है। अतः अक्षर की उपासना अत्यंत आवश्यक है। यह तथ्य पू. भगतजी महाराज और पू. जागा स्वामी ने जान लिया था। ब्र. स्व. शास्त्रीजी महाराज ने तो असंख्य आपत्तियाँ होते हुए भी 'अक्षर पुरुषोत्तम' की युगल उपासना प्रारंभ कर दी और 'अक्षर पुरुषोत्तम' के मंदिर बनवाये।

स्वरूप परंपरा

एक मन्त्र के रूप में यह तथ्य सब स्वीकृत करें कि–प्रगट ब्रह्म स्वरूप ही हमारा जीवभाव नष्ट करके हमें ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठित कर सकते हैं। भगवान स्वामिनारायण अत्यंत कृपा करके अनादि मूल अक्षर को अपने साथ ले आये इतना ही नहीं परन्तु ज्योत से ज्योत जलती रहती है ठीक वैसे ब्रह्मस्वरूप संतों की एक परम्परा चलाई।

परमात्मा या पूर्ण पुरुषोत्तम केवल भगवान स्वामिनारायण ही हैं और कोई नहीं है यह तो निश्चित है। किन्तु उनके समक्ष ले जाने वाली शक्तियाँ निश्चित उन्होंने संसार में छोड़ रखी हैं। इनमें इनके जीवन काल में गुणातीतानंद स्वामी थे और भगवान के स्व स्वरूप में प्रतिष्ठित होने के बाद दीर्घ समय तक गुणातीतानंद स्वामी ने अनेकों का कल्याण किया और प.पू. भगतजी महाराज और प.पू. जागा स्वामी जैसे ब्रह्म चैतन्यों को विरासत के रूप में छोड़ गये। पू. भगतजी महाराज के साथ यह परंपरा आगे बढ़ी और ब्र. स्व. शास्त्रीजी महाराज और ब्र. स्व. योगीजी महाराज के रूप में पल्लवित हुई। योगीजी महाराज ने भी जगत के कल्यण की भावना मन में रख कर जैसे पारसमणि से पारसमणि पैदा हो इस प्रकार ब्रह्म स्वरूपों का निर्माण किया। जो आज पू. काकाजी, पू. पप्पाजी, पू. स्वामिजी और पू. महंत स्वामिजी प्रकट स्वूब में हमारे बीच विद्यमान हैं और जगकल्याण की प्रवृत्त कर रहे हैं।

ब्रह्मस्वरूपों में निष्ठा—एक मात्र साधन

एक बात स्पष्ट याद रखना है कि हम जीवों का किसी भी प्रकार का सीधा तार पूर्ण पुरुषोत्तम के

साथ नहीं जुड़ा हुआ है, क्योंकि हम अनेक आवरणों से बद्ध हैं और जब तक ये आवरण हैं तब तक पुरुषोत्तम कहां? अतः जीवभाव की विनष्टि के लिये प्रत्यक्ष आवश्यक है। यह ही अत्यंत सरल साधन है। इतना हो जाय तो 'छिद्यते हृदय ग्रंथि'—हृदय की ग्रंथि टूट जायेगी और हृदयाकाश निर्मल हो जायेगा, ब्रह्मभाव जागृत हो जायेगा और महाराज का सान्निध्य स्वतः सिद्ध होगा।

जूनागढ़ मंदिर की विशेषता

ब्रह्मस्वरूपों का आदि पुरुष गुणातीतानंद स्वामी थे। अतः महाराज ने जूनागढ़ मंदिर उनको सुर्पुद किया था। इतना ही नहीं सब—बड़े-बड़े संतों और आचार्यों को अंतिम आज्ञा दी थी कि वर्ष में एक बार जूनागढ़ जा कर स्वामी का प्रत्यक्ष समागम करना ही है। इस प्रकार गुणातीतानंद स्वामी के कारण जूनागढ़ का मंदिर अत्यंत पवित्र पवित्रतम स्थल हैं। जूनागढ़ मंदिर और गुणातीतानंदस्वामी इतने ओतप्रोत है कि गुणातीतानंदस्वामी के बिना जूनागढ़ मंदिर की बात हो ही नहीं सकती है। 'आप सरीखे बड़े फकीर' के कारण ही जूनागढ़ मंदिर की विशेषता है।

—क्रमशः

कुरुक्षेत्र में.......
'ब्रह्मभाव जागृति' शिविर।

पूर्ण पुरुषोत्तम श्री सहजानंदजी महाराज का प्रागट्य 1781 में हुआ था। 12 अप्रैल 1981 के दिन उनका जन्म द्विशताब्दी महोत्सव सारा संसार मनायेगा। इसके बारे में प. पू. काकाजी, प. पू. पप्पाजी एवं प. पू. स्वामिजी ने कहा हैः

"द्विशताब्दी महोत्सव जैसी सेवा दुबारा कभी मिलने वाली नहीं है।" महाप्रभु का विश्व कल्याणकारी संदेश व्यापक रूप से फैलाने के लिये सबके साथ पंजाब, हरियाणा और दिल्ली के सत्संग मंडलों को भी कार्य करना है। उसकी तैयारी करने के लिये प. पू. काकाजी की प्रेरणा से कुरुक्षेत्र में 17-18-19 और 20 अक्तूबर को 'ब्रह्मभाव जागृति' शिविर का आयोजन किया गया था और करीब 2 शिविरार्थियों ने उपस्थित रह कर चार दिन आनंदोत्सव किया था। शिविर का उद्घाटन पू. कांतिकाका ने किया था। प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी की निश्रा में शिविर प्रेरित हो गई थी। शिविर में दिल्ली, पंजाब, हरियाणा के सत्संगियों के अतिरिक्त बम्बई से भी सत्संगी-गण आया था।

शिविर में भगवत्स्वरूप की संत निश्रा में सब ब्रह्मभाव में मग्न हो गये थे। मृत्यु अपनी भयानकता आग द्वारा दरवाजे तक ले भी आयी थी। ऐसा प्रसंग आया कि एक क्षण में सब भस्मीभूत हो जाते, किन्तु सर्वदा, सर्वथा मस्त, मुक्त काकाजी ने कह दिया था कि दस मिनिट में आग शान्त हो जायेगी। यह विधि संकेत था।

'मृत्योर्मा अमृतं गमय' का उपनिषद् वाक्य यहां पूर्ण रूपेण चरितार्थ हुआ था। सब भूल गये थे मृत्यु को, सब भूल गये थे स्वजनों को, सब भूल गये थे निजी उदासीनता को और गृहस्थी के संघर्षों को.....

प्रातः काल के बाल सूर्य अपने पवित्र किरणों धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की धरती को स्पर्श करें इसके साथ भगवान की धुन, भजन-कीर्तन और प.पू. काकाजी की अमर संजीवनी वाणी शिविरार्थी के अंतर को स्पर्श करके इसको महानंद में प्रकाशित कर देती थी।

सारा दिन ब्रह्मभाव की पुण्य गंगा अस्खलित प्रवाहित रहती थी और भोजन के पश्चात् मध्यरात्रि तक अखंड ऐक्यभाव में शिविरार्थी मग्न रहते थे।

शिविरार्थी प. पू. काकाजी की वाणी से यह ही निश्चय कर रहे थे कि प्रभु का बल लेकर, प्रभु के ही सहारे, प्रभु के अधीन जीना ही सच्चा जीना है।

एक दृष्टि से यह शिक्षा-शिविर भी था। प.पू. काकाजी जानते हैं कि आगामी वर्षों में हजारों की तादाद में धर्मसैनिक चाहिए और इनको विविध प्रकार के कार्य भी करने हैं। अतः यहां पू. काकाजी ने छोटे छोटे सेवकों को खड़ा कर दिया था—मंच पर आकर बोलने के लिये। पू. काकाजी द्वारा शक्तिमान होने के कारण इनकी वाणी में भी दिव्यता आ गई थी। पू.

Regd. No. D (D) 655

कांतिकाका, प.पू. नागरदासभाई कोठारी, रमेशभाई सोनी, पू. उत्तमस्वामी, पू. महेन्द्र बापू, डॉ. महेन्द्र दवे, प. भ. धरमपालजी आदि अनुभवियों की वाणी ने तो ब्रह्मभाव जागृत ही कर दिया।

पू. काकाजी कहते थे कि अभी तक 24 घंटों में 15 घंटा काम करने का अनुभव था किन्तु इन दिनों 18 घंटा काम कर रहा हूँ।

वास्तव में जैसा कि भगवान श्री कृष्ण ने गीता में लिखा है—

''मुझे तीन लोक में किसी भी प्रकार का कर्तव्य करने की आवश्यकता नहीं है।'' इसी प्रकार पू. काकाजी को भी किसी प्रकार के कर्तव्य करने की आवश्यकता नहीं है। तो प्रश्न यह होता है कि वे इस आयु में इतना अधिक कर्तव्य क्यों करते हैं। उत्तर भी स्पष्ट है कि इनको शीघ्र ही गुणातीतानंदस्वामी का स्वप्न सिद्ध करना है। स्वप्न है संसार का पत्ता-पत्ता 'स्वामिनारायण-स्वामिनारायण' करे। इस स्वप्न का उद्देश्य केवल धर्मचक्र परिवर्तन ही नहीं है किन्तु प्रकृति जड़ जगत की ब्रह्मभाव में जागृति करने का है। यह शिविर द्वारा इस दिशा में एक डग आगे बढ़ सके हैं यह ही इसकी फलश्रुति है।

New Year's Blessings.....

The New Year is the most auspicious occasion or moment in our life for new innovation, vision and creative goal for final emancipation of the Soul.

With Sadguru's grace, love and compassion let our Sankalp be for Eternal Bliss.

Human beings with the natural ignorance of the crude nature normally crave for sensuous pleasures and enjoyments resulting into chaos, confusion, conflicts and tensions.

Therefore, if we start with real 'Samran Yog (Creative Rememberance) then intvitive mind gets direct inspiration from God or the living Sadguru and our entire life gradually experiences and realises the Satchitanand and Supreme Reality (Parbrahma).

Loving friendliness is the essence and acid test of real Spiritualism for prompt resutls, we should start "Giving out doubly then what we take. Whatever is the best with in us be offered to the Divine without any expectations.

May lord Swaminarayan and living Sadguru bless us all for this ennobling vision of enyoying Eternal bliss, freedom and creative Divine Action.

व्रतोत्सवसूची

1 दि. 16–12–80, मंगलवार
नवमी, श्री हरिजयंती, धनुर्मास प्रारंभ
2. दि. 18–12–80, गुरुवार, मोक्षदा एकादशी, व्रत

'श्री स्वामिनारायण'

मूल्य : ७ रुपया

ले.डॉ. महेन्द्रभाई दवे ★प्रकाशक : योगी डिवाईन सोसाईटी
ए–103, अशोकविहार, III, दिल्ली–110 052 फोन– 718838

आपने यह ग्रंथ अपने घर में बसाया? नहीं आज ही उपर्युक्त पते पर लिखिए और ग्रंथ प्राप्त कीजिए।

इस ग्रंथ का पाठ कीजिए, पारायण कीजिए। प.पू. काकाजी का वचन है और मू. अ. मू. गुणातीतानंद स्वामी का आशीर्वाद है। पढ़ते ही आधि व्याधि, उपाधि नष्ट हो जायेगी। परम आनंद की प्राप्ति कीजिए। लेखक का अनुभव है, ''मेरी कलम गुणातीतस्वामी ने ही पकड़ी थी। यह केवल स्वामिनारायण'' की जीवनी नहीं है किन्तु पूरी गुणातीतपरंपरा और इसके कार्य की भी झलक है। 'स्वामिनारायण ही क्यों?'—इस प्रश्न का यहां उत्तर है। स्वल्पमूल्य में मतनीय लाभ प्राप्त कीजिए। पुस्तक शीघ्र अप्राप्य हो जायेगा। आपकी प्रति आज ही सुरक्षित कीजिए। भगवत्सवरूप प. पू. काकाजी के वचन से इस पुस्तक के प्रकाशन में शहादरा के निवासी श्री वी.के. मित्तल ने अच्छी सेवा की है। उनको कोटिशः धन्यवाद।

–सम्पादक

Published by Sadhu Mukundjivandas for Yogi Divine Society,
A 108, Ashokvihar-III, Delhi-110 052. India, Tel. 718838 Printed at Mayur Press Delhi-33